अर्थ

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी,
सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

भारतीय संस्कृति में भौतिक उन्नति और आध्यात्मिक उन्नति का समान महत्त्व है। सभी इस तथ्य से परिचित हैं कि भौतिक उन्नति की प्राप्ति के लिए अर्थ पुरुषार्थ का सेवन आवश्यक है क्योंकि व्यक्ति के सभी प्रयोजन अर्थ से सिद्ध होते हैं। इसलिए संसार के सभी लोग अर्थ की अभिलाषा रखते हैं। तदनुसार 'अर्थ्यते सर्वैः इति अर्थः' अर्थ शब्द की व्युत्पत्ति भी उचित मानी जा सकती है। यद्यपि 'अर्थ' इस शब्द के अनेक अर्थ हैं, तथापि 'पुरुषार्थ चतुष्टय' में 'अर्थ' का अभिप्राय मुख्य रूप से जीविकोपार्जन अथवा धनार्जन करना है, ताकि व्यक्ति अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ धर्म और काम पुरुषार्थों की सिद्धि भी कर सके।

अर्थ मानव जीवन का एक आवश्यक तत्त्व है। पुरुषार्थों के मध्य यह द्वितीयस्थानीय है। इसी से प्रेरित होकर संसार का प्राणी सम्पूर्ण कार्य सम्पादित करता है। अर्थ उस वस्तु को कहते हैं जिससे मनुष्यों की जीविका चल सके। सामान्य रूप से अर्थ का अभिप्राय धन से है परन्तु व्यापक रूप से विचार करने पर ज्ञात होता है कि इसका क्षेत्र केवल धन तक ही सीमित नहीं है, इसका सम्बन्ध भौतिक वैभव, सम्पत्ति तथा शक्ति से भी है।

वात्स्यायन द्वारा कामसूत्र में अर्थ के सम्बन्ध में प्रस्तुत मत से स्पष्ट हो चुका है कि भूमि, विद्या, स्वर्ण, पशु, मुद्रा, अनाज, लकडी आदि दैनिक उपयोग में आने वाले पदार्थ तथा मित्रादि को 'अर्थ' कहा जाता है। अतः इनका उपार्जन आवश्यक है। आचार्य चाणक्य ने भूमि को सर्वश्रेष्ठ 'अर्थ' माना है क्योंकि इसके अतिरिक्त सभी पदार्थों के उपार्जन का आधार यही भूमि है, इसी में सब प्राणी निवास करते हैं, इसी में अन्नादि का उपार्जन किया जाता है-

मनुष्याणां वृत्तिः अर्थः। मनुष्यवती भूमिरित्यर्थः।

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

भूमि की इसी महत्ता के कारण इसे वसुन्धरा कहा जाता है। साहित्यशास्त्रियों ने तो उसे 'सुवर्णपुष्पा' ही माना है। वीर, विद्वान् तथा सेवा करने की योग्यता वाले व्यक्ति ही धनार्जन कर सकते हैं-

सुवर्णपुष्पां पृथिवीं चिन्वन्तीं पुरुषास्त्रयः।

शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम्।।

भूमि के साथ कृषि जुडी हुई है। मनुष्य यदि धर्मानुसार कृषिकार्य करता है, तो फिर कृषि से बढ़कर न कोई धर्म है और न कोई लाभ है और इससे बढ़कर कोई सुख-साधन भी नहीं है। कृषिपराशर में कहा गया है-

कृषिर्धन्या कृषिर्मेध्या जन्तूनां जीवनं कृषिः।

अर्थात् कृषि धन्य है। कृषि पवित्र कर्म है। प्राणियों का जीवन भी कृषि है।

पुनश्च,

एकया च पुनः कृष्या प्रार्थको नैव जायते।

कृष्यन्वितो हो लोकेऽस्मिन् भूयादेकश्च।।

अर्थात् कृषि कर्म करने से कोई व्यक्ति किसी के आगे प्रार्थी नहीं होता है। इस संसार में कोई व्यक्ति तो कृषि करने से भूपति हो जाता है।

भूमि के पश्चात् अन्न को भी अर्थ माना गया है क्योंकि भूमि में उत्पन्न होने वाले अनाज से समस्त प्राणी जीवन धारण करते हैं। वस्तुतः भूमि तथा अन्न के विना तो प्राणियों के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लग जायेगा। इसीलिए कहा गया है-'नहि धान्यसमो ह्यर्थः'।

आचार्य चाणक्य, आचार्य सोमदेव, आचार्य कामन्दक, आचार्य वात्स्यायन तथा महर्षि वेदव्यास प्रभृति आचार्यों के मतानुसार यदि सुख का मूल धर्म है तो धर्म का मूल अर्थ है- **'सुखस्य मूलं धर्मः। धर्मस्य मूलम् अर्थः।'** अर्थात् अर्थ से धर्म की सिद्धि होती है। इतना ही नहीं व्यक्ति के सभी कार्य अर्थ से ही सिद्ध होते हैं। अर्थोपार्जन वृत्ति से होता है और अर्थ से ही धर्म और काम की भी सिद्धि होती है- **'वृत्तिमूलम् अर्थः। अर्थमूलौ धर्मकामौ।'** सुखपूर्वक जीवनयापन करने के लिए अर्थ पुरुषार्थ की सिद्धि

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

अनिवार्य है क्योंकि मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति-रहना, खाना तथा वस्त्र के अतिरिक्त शिक्षा तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी साधन भी धन से ही उपलब्ध किए जा सकते हैं। इसीलिए युवावस्था में धन कमाना आवश्यक माना गया है। जो मनुष्य पहली अवस्था में विद्यार्जन नहीं करता, दूसरी अवस्था में धन नहीं कमाता, तीसरी अवस्था में तप नहीं करता, तो वह चौथी अवस्था में क्या करेगा? अर्थात् बाल्यावस्था में विद्यार्जन के समान ही युवावस्था में धनार्जन अनिवार्य है-

आद्ये वयसि नाधीतं द्वितीये नार्जितं धनम्।

तृतीये न तपस्तप्तं चतुर्थे किं करिष्यति।।

यह मानना उचित होगा कि धर्मशास्त्रियों ने द्वितीय अवस्था को इसीलिए धनार्जन के योग्य अवस्था बताया है क्योंकि इसमें मनुष्य विवाह करके परिवार में वृद्धि करता है। इस उत्तरदायित्व का निर्वाह वह धन के विना नहीं कर सकता। इसके साथ ही गृहस्थ को धर्म और काम पुरुषार्थ की सिद्धि के लिए भी धन की ही आवश्यकता होती है और यह तथ्य सर्वविदित है। अतएव अर्थोपार्जन के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए। देवर्षि नारद भी सभी कार्यों को अर्थमूलक मानते हैं और उसके उपार्जन के लिए प्रयत्न का उपदेश देते हैं-

अर्थमूलाः क्रियाः सर्वा यत्नस्तस्यार्जने मतः।

यह सर्वविदित तथ्य है कि धनार्जन हेतु व्यक्ति उद्योग करता है, तभी उसे धन मिलता है। धनार्जन के पहले उसे विद्योपार्जन करना चाहिए। प्राचीनकाल से अर्वाचीनकाल तक यह देखा गया है कि विद्याप्राप्ति से गुणी और योग्य व्यक्ति बनता है। उसके गुण एवं योग्यता ही उसे धनार्जन सम्बन्धी उद्यम में सहायता देते हैं क्योंकि विद्याप्राप्ति के पश्चात् ही व्यक्ति यह निश्चय कर पाता है कि उसे किस तरह धनार्जन करना है। तत्पश्चात् अध्यापन, वाणिज्य, कृषि, राजसेवा, ललितकला आदि किसी भी माध्यम से वह धन कमा सकता है।

आचार्य शुक्र तथा आचार्य चाणक्य आदि का अभिमत है कि परिश्रमी व्यक्ति को जीविका अवश्य मिलती है और ईश्वर को सर्वस्व समर्पित करते हुए उद्योग करने वाले व्यक्तियों के पास तो लक्ष्मी स्वयं आ

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

जाती है। इसीलिए उन्नतिशील होकर सद्वृत्ति से धनोपार्जन करना चाहिए। उसे अपने दीर्घायुष्य और सुख भोगने की कामना करते हुए धनादि का प्रयत्न करना चाहिए।

अर्थोपार्जन तभी पुरुषार्थ बन सकता है जब उद्यम, विनय, बुद्धि तथा तप से अर्थोपार्जन किया जाए। धनार्जन सदैव उचित मार्ग से ही करना चाहिए, अनुचित मार्ग से नहीं। जो धनार्जन व्यक्ति को दुराचारी बना दे, वह पुरुषार्थ की श्रेणी में नहीं आ सकता क्योंकि जो धनार्जन व्यक्ति को दुराचारी बना दे, वह पुरुषार्थ की श्रेणी में नहीं आता क्योंकि दुराचार का हमारे जीवन-दर्शन में कोई स्थान नहीं है।

अर्थागम के लिए सर्वाधिक अपेक्षा है विनय की। विनय को ही शील भी कहते हैं। इस विनय की प्राप्ति विद्या से होती है। कहा भी गया है-

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।

पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मः ततः सुखम्।।

विनय का लक्षण है-जितेन्द्रियता अर्थात् इन्द्रियसंयम। यह समस्त पुरुषार्थों की प्राप्ति का मूल है। इसीलिए मनुस्मृति में कहा गया है कि मनुष्य अपने मन और इन्द्रियों को सरलता से वश में करके सब पुरुषार्थों को प्राप्त कर सकता है।

ध्यातव्य है कि भारतीय संस्कृति में धन का महत्त्व वहीं तक है, जहाँ तक उससे धर्म की सिद्धि हो। धन भौतिक उन्नति के साथ-साथ, धर्मयुक्त होकर आध्यात्मिक उन्नति का भी साधन है। अतः धनार्जन से मनुष्य का नैतिक पतन नहीं होना चाहिए। वस्तुतः अर्थोपार्जन का प्रयोजन धर्मपुरुषार्थ की सिद्धि है न कि भोग-विलास। अब चूँकि सांसारिक जीवन धन के विना नहीं जिया जा सकता, इसीलिए धन महत्त्वपूर्ण है, किन्तु धनोपार्जन धर्मपूर्वक ही करना चाहिए। वस्तुतः अर्थ महत्त्वपूर्ण तो है परन्तु उसे धर्म के पीछे माना गया है क्योंकि धर्म के अनुशासन के अभाव में अर्थ अपना औचित्य खो सकता है। वस्तुतः अर्थ प्रतिप्राणिभिन्न एवं बहुमुखी है, व्यक्ति को ऐश्वर्य से सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता और अनुचित अर्थसंग्रह से व्यक्ति स्वार्थी बनकर मोक्षच्युत हो जाता है, इसीलिए प्राच्य मनीषियों ने 'अर्थ' की महत्ता स्वीकार करते हुए भी उसे धर्म के बाद स्थान दिया। उन्होंने अर्थ के अनर्थकारी रूप-अर्थनिगूहन-को दृष्टि में रखते

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

हुए अर्थशुद्धि पर अधिक बल दिया-सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम्। एतदर्थ यजुर्वेद में कहा गया है कि समस्त विश्व ईशानुप्राणित है इसीलिए लोभरहित हो उपलब्ध भोगों का उपभोग करना चाहिए-

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चित् जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।

स्वार्थी भावना को नियन्त्रित करने के लिए मनुस्मृति में अर्थोपार्जन के पाँच नियम बताए गए हैं- अर्थोपार्जन करते समय किसी को कष्ट नहीं देना, अपने शरीर को कष्ट नहीं देना, अपने ही श्रम से प्राप्त करना, किसी गर्हित साधन से न प्राप्त करना एवं उसका स्वाध्याय में विघ्नोत्पादक न होना।

राजनीति की दृष्टि से भी अर्थोपार्जन का महत्त्व है, क्योंकि राष्ट्र का योगक्षेम, रक्षा-सुरक्षा अर्थ पर ही निर्भर है, और कोश सप्ताङ्गराज्य का मुख्य अङ्ग है। अर्थशास्त्र में अर्थ को राष्ट्र का मूल कहा गया है- **राष्ट्रस्य मूलमर्थः**'। वस्तुतः अर्थ का महत्त्व मात्र वैयक्तिक जीवन में ही नहीं है, अपितु सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन में भी वह नितान्त अपेक्षणीय है।

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi